Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 SHISRRJ | Volume 2 | Issue 6 | ISSN : 2581- 6306

# वैदिक शिक्षा–प्रणाली में मानवाधिकार एवं आधुनिक शिक्षा–पद्धति

डॉ. सी. के. झा
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, महाराणा प्रताप नेशनल, कालेज, मुलाना, अम्बाला, (हरियाणा)।

**शोधसारांश–** निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मानवाधिकारों की व्यवस्था आज की व्यवस्था नहीं है, बल्कि हमारे वेदों में इसकी व्यवस्था थी। मानवाधिकारों एवं कर्त्तव्यों की शिक्षा अनिवार्य की जानी चाहिए, जिससे सभी को समान अधिकार प्राप्त हो सके। हमारी गरिमामयी भारतीय संस्कृति में सर्वे भवन्तु सुखिनः'' की भावना सर्वोपरि रही है, जो आन्तरिक गुणों के विकास, पवित्र वेदों के अध्ययन, चिन्तन एवं अनुपालन द्वारा ही सम्भव है।

**मुख्य शब्द–** वैदिक, शिक्षा, मानवाधिकार, भारतीय, संस्कृति, वेद, अध्ययन।

अधिकार सामाजिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ है, जिनके बिना न तो व्यक्ति अपने व्यक्तित्त्व का विकास कर सकता है और न ही समाज के लिए उपयोगी कार्य कर सकता है। अधिकारों के बिना मानव जीवन के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। राष्ट्र का सर्वोच्च लक्ष्य व्यक्ति के व्यक्तित्त्व का पूर्ण विकास है, जिसके लिए राष्ट्र के द्वारा व्यक्ति को कतिपय सुविधाएँ प्रदान की जाती है और प्रदान की जाने वाली इन बाह्य सुविधाओं का नाम ही अधिकार है। मानवाधिकारों का अभिप्राय उन नैतिक अधिकारों से है जिनके बिना मनुष्य, मनुष्य ही नहीं रह जाता और जिनसे युक्त होकर वह अन्य प्राणियों से भिन्न होता है। अतः पूर्ण विकास के लिए मानवाधिकार की सुरक्षा आवश्यक है, जो वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व का विषय बना हुआ है। मानवाधिकार की सार्वभौम घोषण संयुक्तराष्ट्र की महासभा ने 10 दिसम्बर 1948 को अंगीकार किया, जिसमें नागरिक, राजनैतिक, आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का विस्तृत समावेश है। भारतीय संविधान के मूल अधिकार भी मानवाधिकार की सार्वभौम घोषणा नागरिक और राजनैतिक अधिकारों की अन्तराष्ट्रीय प्रसंविदा के प्रावधानों के अनुरूप ही है जिसमें 1 समानता का अधिकार 2. स्वतन्त्रता का अधिकार 3. शोषण के विरूद्ध अधिकार 4. धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार 5. संस्कृत और शिक्षा का अधिकार 6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार वर्णित है, जिसकी सुरक्षा कर्त्तव्यों द्वारा हीं सम्भव है।

वेद अनन्त ज्ञान राशि के अक्षय भण्डार हैं। वेदों के पठन–पाठन से ही हमें समाज में उचित ढंग से जीने का मूल मन्त्र प्राप्त होता है। हम परस्पर किस प्रकार का व्यवहार करें। मनुष्य के अधिकार और कर्त्तव्य क्या हैं? इन सभी पक्षों का पर्याप्त वर्णन हमारे वेदों में प्राप्त होता है। वेद ही मानव मात्र का प्रकाशस्तम्भ और शक्ति स्त्रोत है। इसमें गुरू–शिष्य, पिता–पुत्र, पति पत्नी, माता–पिता, समाज और व्यक्ति, राष्ट्र और राष्ट्रीयता, विश्वबन्धुत्व, परोपकार, उद्योग, दान–पुण्य, सत्कर्म एवं अतिथि–सत्कार आदि का विस्तृत विवरण मिलता है। वेदों के प्रति निष्ठा रूचि और मार्गदर्शन की भावना समाज को उन्नति की ओर ले जाती है। यजुर्वेद में वेदों का ज्ञान चारों वर्णों के लिए कल्याणकारी बतलाया गया है– ''यथेमां वाचं कल्याणीम्''।

ऋग्वेद में परमपिता परमात्मा से प्रार्थना की गयी है कि समाज के सभी वर्ग ओजस्वी और समृद्धिशाली हो। और सभी को अधिकार का समान अवसर प्राप्त हो सके। ऋग्वेद के संज्ञान–सूक्त[1] तथा अथर्ववेद के सामनस्य सूक्त[2] में सभी मानवों को अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए मिलकर चलने समान रूप से विचार करने की आज्ञा है, जिसमें समानता का अधिकार प्राप्त होता है।

''यो नो द्वेषत प्रथिवी'' (अथर्व वेद) आदि मंत्र द्वारा स्वतन्त्रता के अधिकार हेतु प्रार्थना की गई है। शत्रुता और द्वेष भावना से युक्त जो लोग हमें परतन्त्रता की बन्धन में जकड़ना चाहते हैं, ऐसे शत्रुओं का विनाश करें – ऐसी प्रार्थना इस मन्त्र में की गई है।

जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं[3] आदि मन्त्र में कहा गया है कि इस मातृभूमि पर विविध प्रकार की वाणियों अथवा भाषाओं को बोलने वाले और नाना धर्मों का अवलम्बन करने वाले लोग इस प्रकार मिलकर रहते हैं कि जिस प्रकार एक घर के व्यक्ति मिलकर रहते है। इस मन्त्र से धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार का संकेत मिलता हैं। भाषा और धर्म के नाम पर भारतवर्ष के टुकड़े–टुकड़े करने पर उतारु और साम्प्रदायिकता से ग्रस्त हो अपने ही निर्दोष, निरीह देश वासी भाइयों को निर्ममतापूर्वक दिन–रात मौत के घाट उतारने वाले नरभक्षियों के लिए स्वीकरणीय उपदेश है; आज भी यह वाक्य विविधता में एकता और विविध भाषाओं तथा धर्मों से सम्बद्ध मानव–समुदायों को सौहार्दपूर्ण सह–अस्तित्व एवं बन्धुत्व की प्रेरणा देता है।

वेदों में नारी के अधिकारों का भी विस्तार से वर्णन है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि यदि पुत्र नहीं है तो पुत्री ही पूरी सम्पत्ति की अधिकारिणी होगी।[4] विवाह के पश्चात् उसे पतिगृह में गृहपत्नी, गृहस्वामिनी का अधिकार प्राप्त होता है।[5]

उपर्युक्त प्रकार से सिद्ध हो जाता है कि मानवाधिकारों की व्यवस्था आज की व्यवस्था नहीं है बल्कि हमारे वेदों में इसकी व्यवस्था थी। मानव अधिकार की सुरक्षा कर्त्तव्यों द्वारा हीं सम्भव है। हमारे वैदिक वाङ्मय में ऋषियों ने धर्म और कर्त्तव्यों के पालन का निर्देश दिए हैं, जिसके फलस्वरूप मानव अधिकार स्वतः सुरक्षित हो जाते हैं। मानवाधिकारों की शिक्षा अनिवार्य की जानी चाहिए, जिससे सभी को समान अधिकार प्राप्त हो सके।

अब हम विचार करें कि वैदिक शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य क्या था? वैदिक शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य था शिष्य का सर्वागीण विकास। उसकी ज्ञान ज्योति को प्रबुद्ध करना, उसे प्रखर से प्रखर बनना और उसके जीवन को सर्वथा सौभाग्यशाली बनाना[6] विद्या के साथ ही व्युत्पत्ति (सुमति, विवेक) का भी समन्वय हो, अतः कहा गया है कि सरस्वती के साथ (विवेक) भी हो।[7] इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वेद ने दो साधन बनाए हैं तप (कठोर अनुशासन) और दीक्षा (समर्पण)[8] वैदिक शिक्षा केवल भौतिक उपलब्धियों तक ही सीमित न रहकर आत्मचिन्तन का ध्येय निर्धारित करती है, अतः शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा, मानव–व्यक्तित्त्व के इन चार पक्षों का समग्र विकास वैदिक शिक्षा प्रणाली का प्रमुख उद्देश्य रहा है।

वैदिक शिक्षा पद्धति गुरुकुलीय एवं यज्ञ प्रधान थी जहाँ परिवेश या पर्यावरण शिक्षा–प्रणाली का अविभाज्य अंग था; केवल स्थान विशेष नहीं, अपितु समग्र विश्व की पवित्रता एवं शान्ति उसका ध्येय था। इस दृष्टि से वैदिक शिक्षा प्रणाली में परिवेश के पोषक तत्त्व तीन माने जा सकते हैं –

**(क) संस्कार :** वैदिक शिक्षा – प्रणाली ''संस्कार–पद्धति'' पर आधारित होने से सर्वथा मनोवैज्ञानिक है। भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार संस्कार–सिद्धान्त शिक्षा का मूलाधार है। संस्कारों के आधार पर बालक की उत्पत्ति से पूर्व, गर्भावस्था में आने पर या उससे भी पूर्व बीज रूप में शिक्षण हो सकता है और बालक को जैसा बनाना हो, उसको वैसा बनाने के लिए माता और पिता अपने संस्कार एवं प्रयत्नों से वैसा बना सकते है।[9] संस्कारों की इस शिक्षण पद्धति से बालक का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास होता है। वैदिक संस्कृति में सोलह संस्कारों की परम्परा मानव प्रकृति के सांस्कृतिक उन्नयन की ही प्रक्रिया थी। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में संस्कार–सिद्धान्त की घोर उपेक्षा की जा रही है, अतः संस्कार शून्य नई पीढ़ी की शिक्षा पूर्णतः निष्फल हो रही है क्योंकि संस्कार परिवेश के सर्वप्रथम सूक्ष्म घटक तत्त्व हैं।

**(ख) गुरूकुल :** गुरूकुलाधारित वैदिक शिक्षा–प्रणाली केवल पुस्तकीय ज्ञान पर बल नहीं देती, उसमें व्यावहारिक आदर्श और चरित्र–निर्माण समान रूप महत्त्वपूर्ण माने गये थे। प्रकृति के सतत् साहचर्य में अपने परिवेश के प्रति जागरूक रहकर जो शिक्षा अर्जित की जाती थी वह शिक्षार्थी को कष्टसहिष्णु, संयमी, उदार एवं परिश्रमी तो बनाती ही थी, उसके अन्तस् में प्राणिमात्र के प्रति दया की भावना भी जगाती थी। शिक्षार्थी को अपने परिवार के संकीर्ण दायरे से निकाल कर विराट् मानव – कुल की भावना में दीक्षित किया जाता था। जब राजा और रंक सभी प्रकार के बालक साथ–साथ समभाव से रहते थे तो वैदिक संगठन[10] के आदर्श मानो साकार हो उठते थे जिससे समानता का अधिकार स्वतः प्राप्त हो जाता था।

(ग) यज्ञ : यज्ञ वैदिक शिक्षा प्रणाली का केन्द्र था। इसके माध्यम से शिक्षार्थियों को आत्म–समर्पण एवं त्याग की शिक्षा दी जाती थी तथा धर्म के विविध प्रकारों, पंचमहायज्ञों से मनुष्यों को अपने सामाजिक दायित्वों के प्रति सजग बनाया जाता था। वैदिक विद्वानों का विश्वास था कि यज्ञ करने वाला सदा उन्नत रहता है।[11] एक अन्य मन्त्र के द्वारा ऋग्वेद ने संगतिकरण के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहा है कि यज्ञ अर्थात्

संगठन के कार्यों से प्रेम करने वाला ही मनुष्य को ज्ञान दे सकता है।[12] इसीलिए वेद कहता है कि महान यज्ञ से कल्याणकारी बल की प्राप्ति होती है।[13] इस प्रकार याज्ञिक प्रक्रिया के विधिपूर्वक सम्पादन से समस्त वायुमण्डल में व्याप्त प्रदूषण का परिशोधन होता है तथा अपने अन्तः करण को जाग्रत रखकर अमृत का अधिकारी बनता है।

वैदिक शिक्षा – प्रणाली में मानवाधिकार की सुरक्षा उदात्त मानवीय भावनाओं और महान् नैतिक मूल्यों पर आधारित है। वैदिक आदर्श के अनुसार शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञानार्जन का माध्यम नहीं, अपितु व्यक्तित्त्व–निर्माण एवं आत्म साधना का अनुशासन था। इसीलिए उसके घटक नैतिक मूल्यों में से प्रमुख तीन पर विचार करना यहाँ अभीष्ट है।

**(क) ब्रह्मचर्य :** वेद में कहा गया है कि ''ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युपाध्नत''[14] अर्थात् देवों ने ब्रह्मचर्य तथा तपस्या के बल पर मृत्यु को परास्त किया और अमर हो गये। प्राचीन भारतीय शिक्षा–पद्धति में सबसे महत्त्वपूर्ण नैतिक मूल्य था ब्रह्मचर्य का अभ्यास जो प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अपरिहार्य था। शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्तर पर प्रत्येक विद्यार्थी को पूर्ण मानव सुयोग्य – गृहस्थ और आदर्श नागरिक बनाना उस शिक्षा प्रणाली का ध्येय था और ब्रह्मचर्य उसका प्रथम सोपान था। इसके लिए वेद का यह आदेश है कि गुरू अपने आचार से विद्यार्थी को शिक्षित करे तभी वह आचार्य कहा जाएगा।[15] अतः शिष्य को ब्रह्मचर्य का उपदेश देने के लिए आचार्य को भी ब्रह्मचर्य का अभ्यास करना होगा।[16] शिक्षार्थी में मानवीयता एवं त्याग की भावना जगाने के साथ–साथ भिक्षाचरण अहम् भाव को विगलित करने एवं अनियमित कामनाओं को नियन्त्रित करके नैतिक अनुशासन सिखाने में सहायक होता था,[17] जिसके फलस्वरूप मानव अधिकार स्वतः सुरक्षित हो जाते थे।

**(ख) तप :** वैदिक शिक्षा प्रणाली में ब्रह्मचर्य के साथ–साथ तप को भी बड़ा महत्त्व दिया गया है। अपने आप को जो धर्म और राष्ट्र के लिए देता है, उसको निश्चय ही तप कहते हैं।

वैदिक मानव केवल प्रार्थना द्वारा हाथ पर हाथ रख कर सब कुछ प्राप्त करने की इच्छा नहीं रखता था, वह अपने पुरूषार्थ में विश्वास रखता था और स्वयं अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रयत्न करता था।[18] उसके मन में यह विश्वास था कि संसार को यदि ऋत चलाता है तो मानव जीवन को सत्य चलाता है। ऋत ही मानव–जीवन में सत्य कहलाता है। कष्ट सहकर भी मनुष्य को सत्य के मार्ग पर दृढ़ रहना चाहिए क्योंकि ऋत और सत्य तप से ही उत्पन्न हुए थे।[19] अन्यत्र भी अनेक प्रकार के तप का वर्णन किया गया है तथा कहा गया है कि तप के द्वारा मुनियों ने स्वर्ग पाया।[26] वैदिक संस्कृति के व्याख्याता मनु ने ज्ञान को ब्राह्मण का तप कहा है।[21] इस प्रकार नैतिक मूल्याधारित वैदिक शिक्षा प्रणाली में तप या श्रम का महत्त्व सुव्यक्त है जिससे मानव अधिकार की सुरक्षा सम्भव है।

**(ग) सर्वजनकल्याण अथवा मानवीयता की भावना :** वैदिक शिक्षा–प्रणाली की सबसे बड़ी विशेषता मानवीय भावना रही है। वेद में व्यक्ति को समाज के योग्य बनाना ही शिक्षा का केन्द्र माना गया अतः सर्वत्र ''कृण्वन्तो विश्वमार्यम्''[22] तथा पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः[23] जैसे आदर्श सामने रखे गये। इनसे अधिक सार्वभौम, सार्वकालिक और मानवतावादी शिक्षाप्रद सन्देश और कहीं मिलने दुर्लभ हैं। मनुष्य मात्र के प्रति सौहार्द और सद्भाव सिखाना[24] वैदिक शिक्षा–प्रणाली का प्रधान लक्ष्य रहा। इसीलिए समस्त विश्व के सभी प्राणियों के प्रति मित्र दृष्टि का विस्तार और ब्रह्माण्ड के सभी लोकों में शान्ति की प्रार्थना[26] वैदिक ऋषियों की मूल कामना थी। वेद के साम्मनस्य सूक्तों[27] में व्यक्त सामाजिक सहयोग की भावना विश्व साहित्य में अद्वितीय ही है और यही समष्टि भावना वैदिक शिक्षा–पद्धति का भी आधार रही है। गुरू–शिष्य एक साथ आश्रम में रहकर श्रद्धा, सहिष्णुता, तप, तितिक्षा एवं त्याग के अतिरिक्त मानवीयता का भी अभ्यास करते थे। समाज के सभी वर्गों के विद्यार्थी एक साथ रहते व पढ़ते थे, अतः सामाजिक वैषम्य या भेदभाव का प्रश्न ही नहीं था। अतः समानता का अधिकार विद्या अध्ययन काल में ही शिष्यों को सुरक्षित हो जाते थे। आचार्य के साथ बैठकर जब राजा और निर्धन सभी के बालक सहनाववतु और ''सह नौ भुनक्तु'' की प्रार्थना करते थे तो उन में विद्वेष और विघटन के भाव स्वतः ही विगलित हो जाते थे तथा वह शिक्षा केवल ज्ञान संग्रह भर नहीं, अपितु विश्वमानवतावादी, क्रियावती, फलवती शिक्षा होती थी। एक सा खान–पान एक सा रहन–सहन और एक सी शिक्षा ही उस सच्चे समाजवाद को मूर्त्त करने में सहायक होते थे जिसकी परिकल्पना वैदिक ऋषियों ने की थी।[28]

इस प्रकार उक्त संकेतों से सुव्यक्त है कि वैदिक शिक्षा–प्रणाली मानवाधिकार एवं कर्त्तव्य पालन पर अधिक बल देती थी। उसका उद्‌देश्य केवल अर्थोपार्जन सिखाना नहीं अपितु धर्म, अर्थ और काम तीनों का समन्वित सेवन सिखाना था जिससे मनुष्य मोक्ष का अधिकारी बन सके और अपने पुरूषार्थ की सिद्धि कर सके।

अब हम विचार करें कि आधुनिक शिक्षा पद्धति से किस प्रकार की शिक्षा दी जा रही है? आधुनिक शिक्षा–पद्धति केवल मनुष्य का मानसिक या बौद्धिक विकास करने पर ही बल देती है किन्तु उससे मानव–व्यक्तित्त्व का विकास नहीं हो पाता है। यही कारण है कि आज शिक्षित जनों के एवं शिक्षा के आंकड़े बढ़ने पर भी हमारा नैतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विकास सर्वथा अवरूद्ध होता जा रहा है। द्रुत औद्योगीकरण एवं भावी समाज के प्रति उदासीनता की भावना ने विश्व में प्राकृतिक सम्पदा का क्षय एवं वातावरण–प्रदूषण बढ़ाने में बहुत सहायता की है।[29] आधुनिक विकास एवं वर्तमान शिक्षा के प्रसार ने सभ्यता का विनाश ही किया है। एक निश्चित भौतिक उन्नति जीवन को आगे बढ़ाती है किन्तु उससे मानवीयता के उत्कर्ष की सम्भावना सुनिश्चित नहीं हो सकती है।[30]

मानव समाज आज मानव अधिकार वाद से त्रस्त है। इसी कारण से व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में टूट और टकराव की संस्कृति का विकास हुआ है। यह भी उल्लेखनीय है कि मानव–अधिकार का सिद्धान्त जो मानवमुक्ति का सबल हथियार रहा है वही आज तबाही का कारण बना हुआ है, क्योंकि आज मनुष्य का ध्यान अपने कर्त्तव्य से हटकर अधिकार पर केन्द्रित हो गया है। सच्ची शिक्षा का अर्थ मनुष्य में अन्तर्निहित पूर्णता का प्रकाशन है।[31] अतः शिक्षा के द्वारा मानव के अन्दर छिपी दानवीय प्रवृत्तियों को नष्ट कर उसे मानवीय आदर्शो के प्रति सजग बनाया जाता है जिससे की वह दिव्यता की ओर उन्मुख हो सके।[32]

हम जानते है कि आज का छात्र ही कल के समाज का रक्षक या प्रहरी होगा। आज आवश्यकता इस बात की है कि आधुनिक शिक्षा पद्धति में वैदिक शिक्षा पद्धति का समावेश हो क्योंकि कर्त्तव्य का ज्ञापक सम्पूर्ण वेद ही हैं। अतः निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि आज की उपयोगितावादी शिक्षा को जीवन के समग्र विकास की दृष्टि से रचनात्मक मोड़ देने के लिए आवश्यक है कि उसमें जीवन–मूल्यों की शिक्षा, मानवीय सम्बन्धों की शिक्षा, परिवेश–परिपोषण की शिक्षा, भावात्मक सन्तुलन की शिक्षा तथा व्यवहार के समन्वय की शिक्षा भी समाविष्ट की जाय। शिक्षा में परिवेश एवं नैतिक मूल्यों के प्रति जागृति का समावेश होने से अन्तः प्रकृति एवं बाह्य प्रकृति के सन्तुलन में सहायता मिलेगी तथा समाज में सच्चे, सर्वागीण रूप से विकसित, आध्यात्मिक आदर्शो से अनुप्राणित मनुष्यों के निर्माण की प्रक्रिया पुनः प्रारम्भ हो सकेगी जो कि वैदिक शिक्षा पद्धति का केन्द्र बिन्दु था। उपर्युक्त प्रकार से सिद्ध हो जाता है कि मानवाधिकारों की व्यवस्था आज की व्यवस्था नहीं है, बल्कि हमारे वेदों में इसकी व्यवस्था थी। मानवाधिकारों एवं कर्त्तव्यों की शिक्षा अनिवार्य की जानी चाहिए, जिससे सभी को समान अधिकार प्राप्त हो सके। हमारी गरिमामयी भारतीय संस्कृति में सर्वे भवन्तु सुखिनः'' की भावना सर्वोपरि रही है, जो आन्तरिक गुणों के विकास, पवित्र वेदों के अध्ययन, चिन्तन एवं अनुपालन द्वारा ही सम्भव है।

**सन्दर्भ ग्रन्थ :**


1. सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वेसंजानानां उपासते।।
समानी व आकृतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। – ऋग्वेद, 10.191.24
2. सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाध्न्या।। – अथर्ववेद, 3.30.1
3. जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नाना धर्माण पृथिवी यथौकसम् अथर्ववेद, 12.1.45
4. ऋग्वेद, 3.31.2
5. गृहान् गच्छ गृह पत्नी यथासः – ऋग्वेद, 10.85.25
6. वर्धयैनं ज्योतयैनं महते सौभगाय।

संशितं चित् संतरं शिशाधि।। – अथर्व 7.16.1
7. शं सरस्वती सह धीमिरस्तु। – अथर्व 19.11.2
8. भद्रमिच्छन्त ऋषयः तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे। – अथर्व 19.41.1
9. वीरसेन वेदश्रमी, वैदिक सम्पदा, पृ0 – 320
10. ऋग्वेद, 191.1–4
11. ऋग्वेद, 10.90. 6–9
12. उर्ध्व ऊषुणो अध्वरस्य होतरग्ने तिष्ठ देवताता यजीयान्। ऋग्वेद, 4.6.1
13. स चेतयन्मनुष्यो यज्ञ बन्धुः। ऋग्वेद, 4.1.9
14. अथर्व, 11.5.19
15. अचारं ग्राह्यति, आचिनोति अर्थान्, आचिनोति बुद्धिमिति वा। निरूक्त, 1.2.3
16. आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते। अथर्व 11.5.17
17. अथ यदात्मनां दरिद्रीकृत्येव अहिर्भूत्वा भिक्षते यऽएवास्य मृत्यौ वादस्तमेव तेन परिक्रीणाति तं संस्कृत्यात्मन्धते सऽएन माविशति शतपथ, 11.3.3–5
18. भीखनलाल आत्रेय, भारतीय नीतिशास्त्र का इतिहास, पृ0 38–39
19. ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्वात्तपसोऽध्यजायत। ऋ 10.190.1
20. त्वं तपः परितप्याजयः स्वः। ऋग्वेद, 10.167.1
21. ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानम्। मनु0 11.236
22. ऋग्वेद, 9.63.5
23. वही, 6.75.14 तथा यजु0 29.51
24. तत्कृष्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरूषेभ्यः। अथर्व 3.30.4
25. यजु0 36.18
26. वही, 36.17
27. ऋ 10.19 तथा अथर्व 3.30, 6.64, 74, 94
28. शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे। ऋ0 7.54.1
भूतस्य जातः पतिरेक आसित्। यजु0 13.4
सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु। अथर्व 14.15.6
29. C.V. Radhakrishnan, science education for the future viveknand kendra patrika, kanyakumari, vol 15, No -2, August 1956, P. 124
30. David E. Williox, A Philosopher's Look at the future, Journal of Thought, vol 13, No – 2 April, 1978 PP 111-116.
31. Education in the Manifestation of perfection already in man. swami vivekananda.
32. It is the through education that the" sub human" and the" in human" in man are slain to enable the' human' in him togive rise to the" super human." prof. K. subramanyam, Indian education. P. 103.